("अकथ कहानी प्रेम की" और "होनी होय सो होय" का संकलन)

भूमिका

सागर से मिला आकाश

बिन पद निरत करों, बिन पद दै दै ताल

बिन नयननि छबि देखणा, श्रवण बिना झनकारि।

पूर्ण साक्षात्कार रहस्यवादी भावना का चरमोत्कर्ष कहना उचित है। समस्त विकारों से रहित, लौकिक आकर्षणों से विरत, भावों के द्वंद्वात्मक संघर्षों से प्रथक साधक की आत्मानुभूति की ही अभिव्यंजना होती है उसकी अनबोली वाणी में। जिसमें सब कुछ भूलकर वह पूर्ण आत्मविस्मृत हो जाता है। नवमुकुलित-सुमन वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष क्रम में लगी हुई पंखुरियों और पराग का संग्रह मात्र है। सुमन के सौरभ और सौंदर्य से हृदय को प्राप्त होने वाले आनंद का बोध वैज्ञानिक को नहीं होता। इसके विपरीत कलाकार को पुष्प में सौंदर्य का ज्ञान नहीं होता, बल्कि अनुभूति होती है। यह अनुभूति उसे अपरोक्ष रूप से होती है। कलाकार से भी अतल गहराई लिए हुए तत्ववेत्ताओं की चेतना को उस परम चेतना की अनुभूति होती है। इस अभौतिक ज्ञान, साधन अनुभूति द्वारा आत्मा एवं अस्तित्व की प्रत्यक्ष अनुभूति सभी मानवप्राणियों के लिए भी उपलब्ध है- "बिन नयननि छबि देखणा, श्रवण बिना झनकारि" केवल प्रत्येक साधक में इस अनुभूति की प्राप्ति के लिए संतों जैसी सरलता एवं सागर जैसी गहराई होनी चाहिए।

सागर की अतल गहराई से उठी हुई तरंग समुद्र की सतह से ऊपर उठ जाती है, उसके तटों की सीमाओं का भी उल्लंघन कर जाती है, किंतु आवास उसका समंदर ही है। अपने जन्म, अपनी स्थिति तथा अपने लय के लिए उसे सागर की ही आवश्यकता रहती है। इसी तरह मानवीय संचेतनात्मक सृजन अपनी असाधारणता में भी रहता जीवन का ही है, पूर्णतम निर्मित भी जीवन के अनंत विस्तार में अपरिचित ही रह जाती है। विश्व की समस्त रूपात्मक तथा जैवी निवृत्ति अणु-परमाणुओं के विशेष संगठन का परिणाम है। मानव एक विशेष भौतिक परिवेश में भी विकास पाता है। विशेष विकास क्रम में उसकी क्रियाशीलता इतनी जटिल और रहस्यमयी रही है कि एक-एक सहज प्रवृत्ति का सहस्त्र-सहस्त्र अर्जित प्रवृत्तियों में रुपांतर हो गया है। और अब एक को दूसरे से भिन्न करना भी असंभव सा है। जैसे एक वटवृक्ष की शाखाएं आकाश की ओर उन्मुख होती हैं तथा जटाएं धरित्री के अंतराल में उतरती हैं, वैसे ही संपूर्ण अस्तित्व मूलतः एक होकर भी सर्वथा विपरीत दिशाओं में प्रसारित सा प्रतीत होता है।

सहस्त्रदल कमल के धीरे-धीरे खुलने वाले सम्पुट के समान ही परम अस्तित्व का सत्य धीरे-धीरे पंखुरित होता है। यह खुलने का क्रम सुंदर तथा उसकी अनुभूति शिव है। शून्य की नौका में बैठकर कभी-कभी समग्र अस्तित्व के सागर को भी अपनी यात्रा करनी पड़ती है। अस्तित्व का यह विशाल सागर शून्य की नौका में ही बैठा है। यह बात सांसारिक लोक में न आज तक किसी ने आंखों से देखी है और न ही किसी ने कानों से सुनी है। किंतु सहस्त्रदल कमल में बैठी मधुमक्षिका ही केवल मधु को पहचान पाती है। पंखुरियों के रस का लोभी भ्रमर केवल सौरभ में सन जाने में जीवन का उद्देश्य मान लेता है। मानव की आस्था की कसौटी काल का क्षण मात्र नहीं बन सकता। क्योंकि वह तो काल पर मनुष्य का स्वनिर्मित सीमावरण है। वस्तुतः साधक की कसौटी क्षणों की अटूट संतृप्ति से निर्मित काल का अजस्त्र प्रवाह ही रहेगा। यह तो शून्य से निर्मित सफीना है जिसमें बैठ कर समंदर को भी सफर करना पड़ता है।

रजत किरणों से नयन पखार

अनोखा ले सौरभ का भार

छलकता लेकर मधु का कोष
चले आए एकाकी पार।

भक्ति, ज्ञान, योग सभी का पर्यवसान मुक्ति में होता है। जिससे उनमें कोई भेद नहीं रह जाता। कबीर के पदों में योग, प्रेम, तथा ध्यान का सुंदर समन्वय हुआ है। यूं तो कबीर के शब्द अत्यंत सरल एवं गहरे हैं। कबीर "मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही न हाथ" कहकर अपनी सादगी को प्रकट कर देते हैं। "वे जुलाहे हैं। जो बोलते हैं, जुलाहे की भाषा है। इसलिए प्यारी भी बहुत है। इसलिए सीधी-सीधी भी बहुत है। उसमें है मिट्टी की सौंधी सुगंध। उसमें गांव की सरलता और सहजता है। जैसे खदान से निकला अभी-अभी हीरा है। तराशा नहीं गया। अभी जौहरियों के हाथ नहीं पड़ा है। अनगढ़ है, इसलिए प्राकृतिक है, नैसर्गिक है, स्वतः स्फूर्त है। बुद्ध के वचन एक सम्राट के वचन हैं- सुसंस्कृत। महावीर के वचन में गणित है, गहरा तर्क, आकाश को छू लेने वाली ऊंचाइयां हैं। कबीर के वचनों में जमीन में गड़ी हुई जड़ें हैं। क्योंकि कबीर तुम्हारे निकटतम हैं। बुद्ध और तुम्हारे बीच बड़ा फासला है, जो फासला राजमहल और झोपड़े के बीच होता है।"

इस तरह यदि हम थोड़ा सहज थोड़ा सजग हो गए तो कबीर के सीधे-सीधे शब्द भीतर पीयूष की फुहारें बन जाएं। तर्क वितर्क के जाल से परे बोलचाल की भाषा में कहे अमृत वचनों में फूलों पर पड़ी ओस की बूंद सी माधुरी है। संत हमारे संपूर्ण जीवन को झकझोर देता है। जीवन को तहस-नहस कर वह क्रांति की तुरही सुनाने लगता है।

कहै कबीर मैं हौं वाही को
होनी होय सो होय।

प्रेम की कथा अकथनीय है। प्रेम का प्रारंभ है, अंत नहीं। यह कथा प्रारंभ होकर अंतहीन अंत पर चलती चली जाती है। एक तारे की स्वर लहरी जो प्रारंभ हुई उसके पहले कोई ध्वनी ही नहीं थी। फिर तो वे तार झंकृत ही होते रहते हैं। सब कुछ डूब जाता है किंतु वे स्वर नहीं डूबते। वह अनंत अस्तित्व की अनुगूंज है। वही शाश्वत का सत्य और सुंदर रूप है। वह गूंज समय का "पार्ट" नहीं, वह समयातीत है। प्रेम की विराटता में हम समाहित हो जाते हैं किंतु हम उसे समाहित नहीं कर पा सकते। इसे निर्विचार में ही जाना जाता है। शून्य में ही परिचय होता है। जो इस शून्य में डूबता है वह प्रेम को समाप्त नहीं कर पाता, स्वयं समाप्त हो जाता है।

पश्चिम के एक बहुत बड़े दार्शनिक विटगिन्स्टीन ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक "ट्रेक्टेट्स" में कहा है, "जिस संबंध में कुछ न कहा जा सके, उस संबंध में हमें कुछ भूल कर भी नहीं कहना चाहिए। क्योंकि जो कुछ भी हम कहेंगे वह गलत एवं भ्रांतिपूर्ण ही होगा।" इस तरह तात्विक बात कभी नहीं कही जाती। जीवन को स्वस्थ रखने का एक ही इलाज है कि हम चित्त से मुक्त हो जाएं। ओशो कहते हैं-

"चित्त शब्दों से भरा है, इसलिए शब्दों के ही द्वारा चित्त से मुक्त हो जाओ, क्योंकि शास्त्रों में कितने ही प्यारे शब्द हों, शब्द, शब्द ही हैं। और तुम्हें जाना है निःशब्द में, तुम्हें जाना है महाशून्य में।"

जो व्यक्ति शून्य हो गया हो उसे भी सर्वसाधारण मानव के प्रति अपनी महाकरुणा की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का सहारा लेना पड़ता है। किंतु शब्द महत्वपूर्ण नहीं है। ये तो इशारे मात्र हैं। आगे और भी आगे महाशून्य में खो जाने के लिए। क्योंकि सर्वसाधारण मानव शब्दों को एक झटके में छोड़ नहीं पाता है, इसलिए ही ऐसे ज्ञानियों को बोलना पड़ता है।

अकथ कहानी प्रेम की और "होनी होय सो होय" नामक प्रवचनमाला में संत शेख फरीद और कबीर जैसे प्रज्ञापुरुषों को भी अपनी देशनाओं के लिए शब्दों की आड़ लेनी पड़ी थी। ओशो ने उन वाणियों को अपनी प्रवचनमाला का आधार बनाकर सर्वसाधारण मानव के लिए सुलभ बना दिया है। शब्दों के पार के संसार में जाने के लिए, शब्दों की दीवारें लांघनी ही पड़ेंगी। फरीद और कबीर जैसे संत हमें अपने आत्मीय से प्रतीत होते हैं। पंडितों एवं पुराहितों की भाषा में वह आत्मीयता नहीं मिलेगी। पंडितों की वाणी में निंदा, भय और अनादार ही मिलता है। संत, शांत, निर्मल झील से ममतामय स्वरूप में हमें अपने प्रतिबिंबों से परिचित कराते हैं। मुक्ताकाश में उड़ानें भरने के लिए उनका मधुर सहलावा हमें निर्भय बना देता है।

सत्य की अनुभूति, ज्ञानेंद्रिय एवं कर्मेंद्रियों से पार की अनुभूति है। यह "न कानों सुना न आंखों देखा" की अनुभूति है। जिस अस्तित्व को न आंखों से देख सकते हैं और न ही जिसकी स्वरलहरी कानों से सुनी जा सकती है, उन्हें फरीद और कबीर ने अपनी अकथनीय भाषा में कहने का प्रयास किया है।

प्रेम हमारी निजता की मृत्यु है, इसलिए उसे महामृत्यु भी कहा जाता है। कहानी प्रेम की अकथनीय है। प्रेम की राह में प्रतिपल चलना ही उसे पा लेना है। "जिसने प्रेम में मरना सीखा, मिटना सीखा, जिसने मिटने का मजा ले लिया, जिसे मिटने स्वाद आ गया- वह शायद मृत्यु में भी मिटने को स्वेच्छा से राजी हो जाए।"

पथ मेरा निर्वाण बन गया
प्रति पग शत वरदान हो गया।

प्रेम की राह ही साधक की मुक्ति का पथ है। जो अंतहीन है। यह तो अतलांत सागर में एक छलांग है, अब तो होनी होय सो होय। अस्तित्व का स्वभाव ही रहस्य है। बेबूझ होना ही उसका धर्म है। इसलिए जितने भी संत हुए, वे हमें रहस्य और बेबूझ ज्ञात होते हैं। क्योंकि उनसे अस्तित्व बोलता है। उनकी वाणी अटपटी मालूम होती है। उनकी भाषा में अतर्क्य कुछ झांकता सा प्रतीत होता है।

एक अचंभा हमने देखा, नदिया लागी आग
पानी पीना जल गया और मछली खेलें फाग

मैंने एक आश्चर्य देखा कि नदी में आग लगी है। पानी पानी जल जाने पर भी उसमें निवास कर रही मछलियां होली खेल रही हैं। यह बात बड़ी रहस्यपूर्ण है, किंतु संतों की इन वाणियों में ही रहस्य बोलता है। कबीर कहते हैं कि यह आश्चर्य है कि तुम मरोगे नहीं। वहीं फरीद कहते हैं- वह परम अमृत तेरे भीतर ही है। तू कहां जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़ भटकता है। तू आखिर किसे खोजता है? यह खोज ही बेकार है। जैसे बीज में वि2ाल वटवृक्ष समाया है उसी तरह व्यक्ति में ही परमात्मा भी बैठा है।

कबीर और फरीद समसामायिक संत थे। प्रेम मार्ग के दोनों पथिक हैं किंतु कबीर कहते हैं- नाच उठा हूं, मौन हो गया हूं, मदमस्त हो गया हूं, यह आकाश टूट पड़ा मेरे ऊपर। यह कैसा प्रेम है जो मुझे भिगोए चला जाता है, डुबोए चला जाता है। यह तो चहुं ओर से रस गगन गुफा में अजस्त्र रस से भिगोए चला जाता है। कबीर स्नेह का आमंत्रण-पत्र हैं जो मात्र औपचारिकता से पूर्ण नहीं है। उसमें अंतःकरण की पुकार है आह्वान के लिए। संतों का जीवन अहोभाव का जीवन है। उसमें प्रार्थना है, मांग कहीं दूर-दूर तक नहीं। वह मांगता नहीं और परमात्मा अजस्त्र रस से भिगोए चला जाता है। कबीर और फरीद दोनों अद्वैत हैं। दोनों का पथ एक है। अब जब कि सब कुछ अस्तित्व के प्रति समग्र समर्पण है तब प्रत्येक बात के लिए कबीर भी तैयार हैं और फरीद भी। जो परमतत्व बिना मांग के ही दिए जा रहा है उसके अनंत प्रवाह में अपने को छोड़ देना ही उन्होंने जाना है। अब खुद का कोई संकल्प विकल्प नहीं रह गया। अब जो होना हो वह हो। इसके लिए चिंतित नहीं हैं वे।

जैसे वर्षा के कजरारे मेघ आसाढ़ में गहराते हैं। नीर से अप्लावित वे शून्य होने को ही आतुर होते हैं। जितनी प्यासी धरती होती है, उतनी आतुरता, उतनी गहन प्यास बादलों के बरसने में भी होती है। मानव यदि शून्य हो जाए अपने हृदय कपाट की अर्गला खोल दे तो परम प्रकाश प्रवेश के हेतु उतना ही प्रशिक्षित है। कबीर और फरीद जिस प्रेम की अकथ कहानी कह रहे हैं वह कामनाओं से परे, प्रार्थना के अहोभाव से परिपूर्ण है। प्रेम की ऊंचाई का वह गौरीशंकर का शिखर जहां यह भाव प्रार्थना और अर्चन, वन्दन बन जाता है। उससे ही तो परम सत्ता के साम्राज्य का सिंहद्वार खुल पड़ता है।

उसकी ऊंचाई के सम्मुख हिम गिरि नगन्य
उसकी नीचाई के सम्मुख नीचा पाताल
उसकी असीमता के सम्मुख आकाश छुद्र
उसकी विराटता के सम्मुख अति छुद्र काल

एक अहर्निश प्यास जलने लगे, दग्ध करने लगे, रोंआ-रोंआ उत्तप्त हो उठे, श्वास-श्वास उसे पुकारने लगे। जिसे तुम जीवन समझते हो, यह तो मिट जाएगा। इसके पहले कि यह जीवन मिटे, इस जीवन को, उस जीवन को पाने की सीढ़ी बना लो, जो कभी नहीं मिटता है। उस शाश्वत को जाने बिना मत जाना।

कबीर और फरीद की वाणी को ओशो ने नई रोशनी में एक नई रोशनी में एक नई स्वरलहरी प्रदान की है, जो मौन-मुखर है। प्रेम के पास कोई भाषा नहीं है, उसकी भाषा मौन की भाषा है। जब प्रेम हृदय में घनीभूत होगा तो अभिव्यक्ति भी तलाशेगा। किंतु अब कोई आधार नहीं है, सब उपाय गूंगे हो गए। इसी कारण प्रेम शब्दातीत है। बूंद में कोई वि2ाल सागर को समाना चाहे, ऐसा ही शब्दों में भरने की चेष्टा मात्र है।

संत मन के पार हो, तो वह गुरु के करीब होता है। प्रकृति रमा की गोद में विचरण करता है। तभी वह परमचेतना के प्रकाश में खिलता है, और संपूर्ण अस्तित्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर अद्वैत हो जाता है। ओशो इन वाणियों के माध्यम से हमें "सुरति" दिलाने आए हैं। वे सोते हुए मनों को जगाने की पुकार लेकर प्रकट हुए हैं। सुदूर पथ की यात्रा पर ले चलने आए हैं जहां प्रेम जागकर विराट से विराटतम होने लगता है।

हिन्दी साहित्य के बड़े-बड़े विद्वान और आचार्य कबीर और फरीद जैसे बेपढ़े-लिखे संतों की शाब्दिक व्याख्याएं करने में आपस में संघर्षरत हो गए। उस युग की सामाजिकता एवं धार्मिक अवस्थाओं के इतिहास के पन्ने पलटने में ही समय गंवाते रहे। उनकी कविताओं में उपमा, रूपक, छंदों के वर्णवृत्तों की खोज करते रहे। क्योंकि संत-काव्य की सर्जरी कर स्पेशालिस्ट का नामपट उन्हें अपने साहित्य की दुकानों के दरवाजों पर लगाना था। उनकी अनुभूतियों को, उनकी दीवानगी एवं उनके समर्पण की गहराई में डूबकर उसे पुनुरुज्जीवन देना कोई इन जैसे दूकानदारों का कार्य भी नहीं था। उसके लिए वही पकड़ता, अलमस्ती, और अनुभूति का आकाश अपने में लिए कोई "दिवाना" ही उन अनुभूतियों को पुनः हम तक पहुंचा सकता है।

ओशो ही मानो कबीर एवं फरीद की वाणियों के माध्यम से हमसे संवाद करते प्रतीत होते हैं। इन संतों की देशनाओं के प्याले ओशो ने अपनी आत्मा की सुराही से भर कर हमें सौंपे हैं। जिसकी जितनी क्षमता है वह उतना पिए। और मतवाला होकर खुद को ही विस्मृति दे दे।

कबीर अगर आग हैं तो उसे अपनी हथेलियों में रखकर ओशो ने करोड़ों दीपों को जीवनदान दिया है। मन की अंधेरी घाटियों में बिलबलिते वासना के भयानक सर्प एवं बिच्छुओं को सर्वसाधारण मानव से परिचित कराया है। अंतस की ओर यदि हम घूमें, वहां मधुधार से हमारा परिचय हो सकेगा। उस स्त्रोत को ही पहचानना है। आसक्ति के विचारों के मकड़-जाल हमें बांधे रहते हैं। प्रेम का सहज स्वरूप जहां प्रकट होता है तब परम चेतना की एक झलक वह प्राप्त कर पाता है।

सब कहते हैं- खोलो खोलो
छबि देखूंगा जीवन धन की
आवरण सभी बन जाते हैं
है भीड़ लग रही दर्शन की

जिसकी और पाने की आपाधापी समाप्त हो गई उसकी दौड़ भी चली जाती है। यह तृष्णा ही है जो हमें जन्मों में वापस लाती है। जो इस चक्रव्यूह के बाहर है उसके आनंद का पारावार नहीं। जीवन रहस्य तो एक संगीत की तरह है जो परमात्मा बजाता है, एक सिद्धांत की तरह नहीं है जो गणित की तरह ब्लैक-बोर्ड पर समझाया जाता है। कबीर जो ध्यान के लिए शब्द उपयोग करते हैं, वह शब्द है- "सबद" जिसके भीतर रात की धुन अपने आप उठने लगी है, उठानी नहीं पड़ती, जिसके भीतर ओंकार का नाद होने लगा है उसको सबद कहते हैं वे। ओशो उसे ध्यान की संज्ञा देते हैं। साखी भी कबीर का अपना शब्द है। साखी, साक्षी का ही रूप है। जिसे साक्षी की प्रतीति हुई उसके वचन का नाम साखी। जिसने अपने हृदय में साक्षी को अनुभूत कर लिया हो, वह ध्यान की अंतिम शुद्धता है। हम एकदम अवाक रह जाते हैं, मौन रह जाते हैं। एक क्षण को आश्चर्यचकित, विमुग्ध, ठगे-ठगे रह जाते हैं। अवाक! वाणी खो जाती है। शब्द डूब जाते हैं, ज्ञान तिरोहित हो जाता है। एक

अनजाना रहस्य किसी अज्ञात लोक से उतरकर हमें घेर लेता है। हम रहस्य में नहा जाते हैं। यही अस्तित्व की अनुभूति का आरंभ है।

कर्मकांडी नबियों के घोर विरोध ने सूफी संतों की प्रेम-भावना को परिमार्जित करके ही उसके परम प्रेम के रूप में प्रतिष्ठित किया था। राबिया ने माधुर्यभाव की स्थापना सूफीमत में की। अपने इष्ट से मिलने में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता उसे न जान पड़ी। मानवीय अंतर्वृत्तियों में प्रेम का किसी विशेष गुण से संबंध नहीं होता, वह तो सामान्य को भी विशिष्ट बना देता है। प्रिय के माध्यम से उसे अपने व्यक्तित्व के प्रसार का अवसर प्राप्त होता है। केंद्रगत आकर्षण प्रेम है। उसमें दुराव द्विधा और संकोच का स्थान नहीं होता। व्यक्तित्व अपने सीमित क्षेत्र को छोड़कर व्यापकत्व को प्राप्त करता है।

प्रेम जिस प्रकार बरबस उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सच्ची प्रीत की लगन भी बरबस बढ़ती है। प्रेम की निश्चयत्मकता के कारण प्रिय प्राप्ति की दुरूहता या प्रयास के कष्ट, त्याग और आपा, मिटाने की भावना दृढ़ होती जाती है। उसमें दुराव द्विधा और संकोच का स्थान नहीं होता। व्यक्तित्व अपने सीमित क्षेत्र को छोड़कर व्यापकत्व को प्राप्त करता है।

प्रेम की निश्चयात्मक के कारण कोई अभिलाषा नहीं होती। शेख फरीद प्रेम के पथिक हैं। फरीद ने शुद्ध प्रेम की बांसुरी की स्वर लहरी ही छेड़ी है। कबीर भी प्रेम की चर्चा करते हैं लेकिन ध्यान एवं योग की भी बातें करते हैं। फरीद को समझना प्रेम की गहराई को ही जानना होगा। शेख के प्रेम में ही समाधि है। जब मनुष्य स्वेच्छा से समर्पित होगा तभी उस प्रेम की एक अम्लान किरण उसके हृदय पर नृत्य करेगी।

भक्ति परम स्थिति है, वह आखिरी बात है।

उससे ऊपर कोई उंचाई नहीं। वह अंतिम आकाश है।

स्त्रैण चित्त की साकार प्रतिमा में ही परमात्मा अपनी प्राण-प्रतिष्ठा करता है। प्रेम एक अंतरतम पहचान है- बिना जाने, बिना पूर्व परिचय के, और हृदय पहचान लेता है। प्रेम का यह अलौकिक अवसर फरीद गंवाना नहीं चाहते। अब तो द्वार पर जो दस्तक देगा उसे शेख पहचान ही लेंगे। कालातीत को जीने के लिए क्षणभंगुरता का आभास भी होता है हमें, लेकिन इसमें ही शाश्वत छिपा है। क्षुद्रता चारों तरफ रहे किंतु इससे चिंतित नहीं होना है हमें। समय की अवरत धार में रहकर भी हमारे प्राणों की जड़े अनंत की गहराई में जमी हुई हैं।

ओशो कहते हैं- "अकथ कहानी प्रेम की प्रारंभ होती है। एक दिन वीणा के तार बजने शुरू होते हैं। उसके पहले भनक भी नहीं थी। फिर वीणा बजती ही चली जाती है। वह गूंज अनंत की है, शाश्वत की है, वह समय का हिस्सा नहीं, समय के पार है। तुम्हारे लिए प्रेम करीब होगा। उससे तुम्हारे तार जुड़ जाएंगे। प्रेम भी आखिर ध्यान पर पहुंचा देता है। ध्यान सीधी छलांग है। प्रेम तो क्रमिक उपाय है। ध्यान बड़ा दुस्साहस मांगता है- अंधेरे में कूद जाने का। प्रेम धीरे-धीरे फुसलाता है, आ जाओ आश्वासन देता है, घबड़ाओ मत, साथ हूं मैं। प्रेम सुगम है, ध्यान दुर्गम है।"

अपने गंतव्य पर पहुचने के लिए थोड़ी भटकन आवश्यक है। इसी तरह ध्यान तक के सफर के लिए प्रेम की यात्रा आवश्यक है। संत फरीद कहते हैं, कौन सा शब्द है, जो तेरे कानों को मीठा हो, वही गाऊं, वही गुनगुनाऊं? कौन-सा गुण है जो मैं ओढ़ लूं और तेरे प्रेम की नजर मेरी तरफ हो जाए। कबीर, और फरीद हमें हमारे अत्यंत निकट के प्रतीत होते हैं। बुद्ध और महावीर में एक फासला पाते हैं। फरीद में हम अपने वर्तमान के सत्य को भी पाते हैं और भविष्य को भी। स्वाभाविक है कि उनसे आत्मीयता लगे। फरीद की भक्ति विस्तार पाते-पाते महावीर की अहिंसा हो जाती है। वही बुद्ध की महाकरुणा बन जाती है। शुरू हुआ था फरीद का प्रेम परमात्मा से, अंत होता है समस्त से। गंगोत्री जब प्रारंभ होती है तब अत्यंत क्षीणकाय धार होती है किंतु जब महासागर में वह मिलकर गंगासागर ही बन जाती है।

प्रेम का प्रारंभ माशूक का आशिक से इश्क होता है लेकिन यही प्रेम बाद में-

मधुर मुझको हो गए सब
मधुर प्रिय की भावना ले

के रूप में अपने आप को पाता है। प्रेम मार्ग को भी मूल्य देता है। ध्यान सिर्फ सिद्धि है। ध्यान क्रमिक नहीं, त्वरित है। वह छलांग है। भक्ति की अंतिम अवस्था पूर्ण आत्म समर्पण है। उसमें सोच विचार करने की

आवश्यकता नहीं। परमात्मा ही नदी है तथा वही मल्लाह भी। शून्य के अलौकिक मंदिर में अदभुत पताका लगी हैं। अगणित ताराओं के मणि-मुक्ताओं से जटित चंद्र ज्योत्सना का वितान तना हुआ है, रवि शशि की दीप ज्योति द्दुतिमान है। उस अनुपम लोक की शोभा देखकर भक्त का मन थिरक उठता है। जो इस अपूर्व दृश्य का दर्शन करता है वह जीवन पयर्न्त बावले अलमस्त डोलते रहे-

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशिरी क्या
रहें आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या
जो बिछुड़े पियारे से भटकते दर-ब-दर फिरते
हमारा यार है हममें हमन को इंतजारी क्या

समाधि की अवस्था का अर्थ होता है जहां सारी समस्याओं का समाधान हो गया। जहां कोई व्याकुलता नहीं। न कोई संताप, न चिंता, न लोभ, न भय ही रहा। मनुष्य भी एक बीज है। और जब तक उसमें सहस्त्रदल कमल का फूल न खिल जाए- जिसको योगी कहते हैं सहस्त्रदल कमल, जिसको बुद्ध ने निर्वाण कहा, जिसको महावीर ने कैवल्य, जिसको कबीर कहते हैं सुरति या दशम द्वार- सहस्त्रार। जब तक ध्यान की त्वरा न होगी, जब तक ध्यान एक जलती अग्नि न बन जाए जब तक दसवां द्वार नहीं खुलेगा। दसवें द्वार की प्रतीति परमात्मा है।

न कानों सुना न आंखों देखा प्रवचनमाला के अंतर्गत ओशो ने कबीर एवं फरीद की वाणी को सहजता प्रदान की है। सिर्फ शाब्दिक अर्थों से ही उनकी कविता का परिचय कराना उनका उद्देश्य नहीं था। उन वाणियों में गुंथी हुई अनकही अनुभूतियों को भी कहने का प्रयास किया है। कबीर एवं फरीद वाणी के साथ-साथ जिज्ञासु एवं मुमुक्षुओं के दृश्य में उठनेवाले प्रश्नों के समाधान भी भगवान ने किए हैं। इस संबंध में भगवान का कथन ध्यान देने योग्य है-

"जीवन के जो वास्तविक प्रश्न हैं, उनके उत्तर नहीं होते। जो उत्तर देते हैं वे मूढ़ हैं। पूछने वाला नासमझ है, इसलिए पूछ रहा है और उत्तर देने वाला भी नासमझ है, इसलिए उत्तर दे रहा है। वस्तुतः ज्ञानी जो हैं वे तुम्हारे मूढ़ प्रश्नों के उत्तर नहीं देते। समाधान देते हैं, उत्तर नहीं, भेद समझ लेना। उत्तर और समाधान में बड़ा भेद हैः प्रश्न का गिर जाना, प्रश्न का मिट जाना।"

इस तरह हम देखते हैं कि भगवान ने प्रत्येक मुमुक्षु के अंतरतम तक झकझोर कर सारे प्रश्नों को मिटा दिया है। हम शब्दों को ही पहचानते हैं, शून्य को नहीं पहचानते। फरीद और कबीर के मिलन की कथा बड़ी अनूठी है। जब एक बार दोनों एक दूसरे से मिले तब उनके शिष्य अबोले मिलन को आश्चर्य से देखते रह गए। बिना वाणी के ही उनका संवाद हुआ शून्य में। वह दो शून्यों का मिलन था। जब दो शून्य मिलते हैं तब द्वैत समाप्त हो जाता है। वार्तालाप कैसे होगा? जैसे पानी की दो बूंदें सरकते-सरकते पास आ जाती हैं फिर एक ही आकार बन जाता है।

ऐसे ही कबीर एवं फरीद इस प्रवचनमाला के दो ऐसे वि2ाल शून्यता के सागर हैं जो धीरे-धीरे अपने प्रेम में आकर्षित होकर सरकते-सरकते एकाकार हो गए हैं। आकाश इनके मिलन को अनुभूत कर रहा है।

आज का मानव कुंठाग्रस्त दुखी और दिक्भ्रमित है। इसका कारण यह है कि वह वर्तमान में जीना नहीं जानता। उसे इस मर्म का भी अहसास नहीं कि अस्तित्व का आधार कोई द्वयता नहीं है। ओशो यदि कबीर या फरीद को चुनते हैं तो उनके इस चयन के पीछे अद्वैत की देशनाओं का ही समर्थन है। आत्मा पर नाम, रूप, दर्शन, उपाधि के कई झीने-झीने परदें हैंः उन परदों की सदृढ़ दिवारें तोड़ कर हमारी शुद्ध चेतना से हमारा साक्षात्तकार कराना इन महान संतों का जीवन लक्ष्य रहा है।

ओशो की कल्पनाशीलता, अत्यंत काव्यमयी भाषा सीधे हृदय को स्पर्श करने वाली है। उसमें बिंबविधायकता एवं अपार विश्लेषण क्षमता है। भाषा शैली में प्रवाह, प्रांजलता, विशदता एवं प्रभाविष्णुता का सुंदरतम सामंजस्य है। अध्यात्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों के सरलतम विश्लेषण में उनकी भाषा की गरिमा स्पष्ट है। दर्शन की शुष्कता में कविता की प्राणमयी धारा प्रवाहित कर समस्त जिज्ञासुओं के मन प्राण आप्लावित कर दिए हैं।

युद्धभय, अर्थ-संक्रांति, हत्याएं, सांप्रदायिकता, आतंकवाद इन कुचक्रों में उलझा सारा विश्व अराजकता की स्थिति में है। दिशाबोध नष्ट हो गया है। घोर कालिमामयी रजनी में कबीर एवं फरीद की प्रेम-रश्मि उनके सिकुड़े सिमटे जीवन में नए प्राणों का संगीत भर देंगी। इन अदभुत वचनों में ओशो ने मात्र उन्हीं प्रश्नों का समाधान नहीं किया जो हमने पूछे हैं; उनका भी समाधान हमें मिलता है जो प्रश्न हम कभी नहीं पूछते। उन्होंने उन प्रश्नों को भी मिटा दिया है जो हम पूछना चाहते हैं किंतु शब्दों की सीमाएं उस असीम को बांध नहीं पाती हैं। हमारे अचेतन में पड़े हुए प्रश्नों के भी समाधान समाहित हैं इनमें, जो शायद कभी चेतन भी नहीं हो पाते। गुरु के बहाने चुप शांत बैठना हम सीखते हैं। उसके द्वारा ही सत्संग की कला एवं संगीत में डूबते हैं। वही माध्यम है। जो रहस्यानुभूति हमारे ज्ञान के क्षेत्र में एक सिद्धांत मात्र थी वही हृदय की कोमलतम भावनाओं में प्राण प्रतिष्ठा पाकर इन संतों के अलौकिक प्रेम से अतिरंजित होकर ऐसे कलात्मक रूप में अवतीर्ण हुई जिसने मानव के हृदय और बुद्धि के दोनों किनारों को तृप्ति प्रदान कर दी। एक ओर कबीर की ध्यान साधना और प्रेम की सम-विषम शिलाओं से बंधा हुआ और दूसरी और फरीद के विशद प्रेम विरह की अत्यंत शिरीशा कोमल अनुभूतियों की बेला में उन्मुक्त यह रहस्य का सागर, मानव संस्कृति को क्या दे सका है यह कहना अत्यंत कठिन ही होगा। इतना निश्चित है कि इस भौतिकता से परिपूर्ण शुष्क जगत में इसकी उपादेयता कितनी और किस सीमा तक है उसे भगवान की मुखर-मौन वाणी ने अपनी सरलतम एवं सहजतम अभिव्यक्ति में प्रतीति करा दी है।

सागर ही तुम्हारा सत्य नहीं
वह तो गतिमय स्रोत की तरह
गतिहीन स्थिर भर है।
तुम्हारा सत्य तुम्हारे ही भीतर है।
ओ रंभाती नदियो
बेसुध
कहां भागी जाती हो?
वंशीरव
तुम्हारे ही भीतर है।

प्रो.डॉ.विकल गौतम
अनहद
13, शिवनेरी ले आऊट,
तपोवन रोड, कॅम्प अमरावती
(महाराष्ट्र)-444606

डॉ विकल गौतम नागपुर विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम.ए., पीएच. डी. हैं और उनके मार्गदर्शन में बहुत-से छात्र पीएच.डी. प्राप्त कर चुके हैं। आप नागपुर विश्वविद्यालय की हिंदी साहित्य परिषद के सचिव होने के साथ-साथ "कोंपले", "ज्येति", तथा "वसंतोत्सव" नाम की तीन पत्रिकाओं के संपादक हैं। आपने लगभग 25 नाटकों का निर्माण एवं निर्देशन किया है तथा प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है। आल इंडिया रेडिओ, नागपुर स्टेशन के आप नियमित वक्ता हैं और साथ ही महाराष्ट्र की अनेकों सांस्कृतिक संस्थाओं के सक्रिय पदाधिकारी हैं।

अनुक्रम

अकथ कहानी प्रेम की

होनी होय सो होय